

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-6), शनिवार, 12 अक्टूबर 2024

विवेचक: गीता प्रवीण कविता जी वर्मा

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/hsiG4mCsoVw>

भगवत् प्राप्ति हेतु परम गुह्य ज्ञान

सुमधुर एवम् आत्मशुद्धि करने वाले कर्णप्रिय भगवत् भजनों के पश्चात ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवम् दीप प्रज्वलन से हुआ। तत्पश्चात श्रीमद्भगवद्गीता जी के नवम अध्याय (राजविद्याराजगुह्ययोग) का विवेचन प्रारम्भ हुआ।

नौवें अध्याय का विवेचन प्रारम्भ करने से पूर्व, गत सप्ताह हम सत्रहवें अध्याय के विवेचन सत्र को सम्पूर्ण कर यह समझ सके कि किस प्रकार श्रीभगवान श्रीमद्भगवद्गीता जी में पूर्व वर्णित अध्याय में श्रद्धा के विभिन्न विभागों के विषय में स्पष्ट करते हैं तथा प्रकृति के त्रिगुणात्मक स्वरूप के परिणाम वश मनुष्य के आचरण तथा उसके हृदय में उत्पन्न श्रद्धा पर किस प्रकार सात्त्विक, तामसी एवम् राजसी गुणों का प्राकट्य होता है एवम् कैसे यह प्रवृत्तियाँ (गुण) जीव के कर्मों तथा कर्म फलों को प्रभावित करती हैं।

यह सकाम कर्म हमें उनकी प्रकृति अनुसार सांसारिक बन्धनों में बाँधते हैं तथापि इन कर्म बन्धनों से युक्त जीव आत्मा संसार रूपी इस भवसागर से मुक्त हुए बिना ही निरन्तर जन्म-मृत्यु के चक्र उलझा रहता है।

जीव में उसकी प्रकृति अनुसार श्रद्धा का प्रादुर्भाव होता है तथा वह उसी आधार पर विभिन्न कर्मों में लिप्त होता है। सत्रहवें अध्याय में विभिन्न प्रकृति युक्त भोजन, यज्ञ तथा तप आदि के विषय में एवम् उनके परिणामों को भी श्रीभगवान ने वर्णित किया।

अध्याय अट्ठारह में भी पुनः आवृत्ति स्वरूप श्रीभगवान यज्ञ, तप एवम् दान (सात्त्विक) को अनिवार्य बताते हुए कहते हैं कि

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

श्रीभगवान द्वारा वर्णित यह तीनों कर्म जो सात्त्विक प्रवृत्ति के अन्तर्गत सम्पन्न हों किसी भी परिस्थिति में त्याज्य नहीं हैं।

तत्पश्चात श्रीभगवान ॐ तत्सदिति अर्थात् ॐ तत्, सत् का उपयोग बताते हैं, जिन्हें परब्रह्म को सूचित या सम्बोधित करने हेतु

प्रयुक्त किया जाता है।

आज का विवेचन सत्र जिस अध्याय से सम्बद्ध है उस अध्याय का नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है- राजविद्याराजगुह्ययोग जहाँ विद्या का अर्थ ज्ञान (knowledge) एवम् गुह्यतम अर्थात् secrete (गुप्त) तथा राज का अर्थ है, **kingly अर्थात् (kingly secrete knowledge)** राज का गुप्त ज्ञान।

गीता जी में अट्ठारह अध्याय हैं चूँकि नवम अध्याय जो मध्य में है उसमें (कर्म, ज्ञान, भक्ति से युक्त) सम्पूर्ण गीता जी आ जाती हैं। जिसको जानने के पश्चात मनुष्य कर्म बन्धनों से युक्त इस दुःखालय स्वरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।

ज्ञानेश्वर महाराज जी बताते हैं कि यहाँ श्रीभगवान ने भगवत् प्राप्ति के समस्त मार्ग चाहे वह भक्ति मार्ग हो, ज्ञान मार्ग या कर्म मार्ग के श्लोक उल्लेखित किए हैं, जिनका विस्तारपूर्वक विवरण गीता जी के अन्य अध्यायों में देखने को मिलता है।

9.1

श्रीभगवानुवाच इदं(न) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे। ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्षसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन- श्रीभगवान इस श्लोक के माध्यम से अर्जुन के समक्ष उनके चारित्रिक गुणों की विशेषताओं में से एक विशेषता को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम मुझसे ईर्ष्या नहीं करते अर्थात् द्वेष से रहित हो।

इदम्- श्रीभगवान द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त यह शब्द, उनके द्वारा अर्जुन को यह बताना है कि यह परम् गुह्य ज्ञान मेरे द्वारा पूर्व के अध्यायों में वर्णित किया जा चुका है, परन्तु भगवत् प्राप्ति मार्ग की ओर ले जाने वाली यह राजविद्या पुनः मेरे द्वारा बताई जा रही है।

श्रीभगवान का अर्जुन को अनसूयवे उच्चारित करना यह बताता है कि अर्जुन का अन्तःकरण मलीनता से मुक्त पूर्णतः शुद्ध एवम् सात्त्विक है। वे किसी के प्रति भी द्वेष भाव से युक्त नहीं हैं अर्थात् वे समस्त मानव मात्र में सम भाव रखते हुए, उनमें सत् गुणों से युक्त जीवात्मा, जो वास्तव में सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीभगवान का ही अंश रूप है, को आत्मसात करते हैं।

यहाँ तक कि दुर्योधन जो कि मूढ़ बुद्धि, नीच एवम् दुराचारी है, हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार कपटपूर्वक उसने युधिष्ठिर को द्रुपद क्रीड़ा में पराजित किया। कुरु राजवंश की कुलवधु द्रौपदी को कुरु राजसभा में अपमानित किया एवम् अर्जुन तथा द्रौपदी सहित समस्त पाण्डु पुत्रों को बारह वर्ष का वनवास एवम् एक वर्ष का अज्ञातवास दिया।

दुर्योधन द्वारा किए गए इतने अत्याचारों के पश्चात् भी उसने पाण्डवों को उनका राज्य माँगने पर उन्हें तिरस्कृत किया, श्रीकृष्ण को भी अपमानित किया तथा सम्पूर्ण कुरुवंशियों को एक ऐसे महाविनाशक युद्ध के लिए बाध्य कर दिया। जिसमें मृत्यु अपने विकराल मुख के साथ शवों हेतु प्रतीक्षारत थी, जिसे कदापि नहीं टाला जा सकता था एवम् इस युद्ध में कोई भी विजय हो, रक्तपात तो कुरुवंशियों का ही होना था।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥11.1॥

प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक जहाँ सञ्जय धृतराष्ट्र को उनके द्वारा पूछे जाने पर कि युद्ध भूमि में मेरे पुत्र एवम् पाण्डु के पुत्रों की क्या स्थिति है, सञ्जय धृतराष्ट्र को दोनों ही सेनाओं की स्थिति से एवम् दुर्योधन तथा अर्जुन की मनःस्थिति से अवगत करवाते हैं।

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्॥१.२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥१.३॥

चूँकि नीच दुर्योधन ही इस सम्पूर्ण पारिवारिक कलह का सूत्रधार था तथा अपनी कलुषित कामनाओं के कारण सम्पूर्ण कुरुवंश को युद्ध की दावानल में झोंकने हेतु आतुर था, उसकी यही आतुरता एवम् पराजित होने का भय उसके व्यवहार में स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है।

अर्जुन उवाच

कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥१.२४॥

इसके विपरीत अर्जुन में भय तो निश्चित ही निहित है परन्तु वह भय विजयश्री प्राप्त करने का न होकर अपने परिजनों का स्वयं अपने हाथों से युद्ध क्षेत्र में वध करने का है। यह युद्ध न करना ही अर्जुन की प्राथमिकता है तथा वे इस हेतु पृथ्वी का ही नहीं सम्पूर्ण जगत, त्रिलोक का भी राज्य त्यागने को तत्पर हैं।

अर्जुन का यह विचार उनके मन की कोमलता एवम् शुद्धता का परिचायक है। अतः जब इस अन्तःकरण की शुद्धता में भक्ति का सम्मिश्रण होता है तब भगवत् प्राप्ति का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त हो जाता है।

अतः भगवत् प्राप्ति हेतु अर्जुन सदृश अन्तःकरण की शुद्धता अपरिहार्य है। जीव केवल आहार मुख के माध्यम से ही ग्रहण नहीं करता अपितु नेत्रों का देखना एवम् कर्णों से श्रवण करना भी आहार ग्रहण करने के ही सदृश है।

अतः आप जिस प्रकृति या गुणों से युक्त आहार ग्रहण करेंगे, आपके स्वभाव, आचरण में भी वही प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होंगी। जैसे यदि आप प्रतिदिन दूषित शब्दों का श्रवण करते हैं, कदाचित् कुछ समय पश्चात् वह दूषित शब्द आप स्वयं उच्चारित करने लगते हैं। यही कारण है कि हमारे ऋषिगण तथा सन्त समुदाय सामान्य जन-मानस से सत्सङ्ग करने का आग्रह करते हैं ताकि निरन्तर सत्सङ्ग से मानव अन्तःकरण शुद्ध हो तथा यह शुद्ध मन एक सच्चरित्र जीव का प्रणेता बने।

गीता जी का पठन भी इस शृङ्खला में निरन्तर प्रगति का प्रथम चरण है।

ज्ञान- ब्रह्म ज्ञान (ईश्वर की उपस्थिति का ज्ञान।)

विज्ञान- अनुभूत ज्ञान (ईश्वर की उपस्थिति को अनुभव करना।)

ज्ञान का अर्थ तो हम समस्त समझते हैं परन्तु यहाँ विज्ञान का अर्थ स्पष्ट करने की आवश्यकता है। विज्ञान को यहाँ अनुभूति अर्थात् जब किसी ने रसगुल्ला या किसी मिठाई का स्वाद न चखा हो तथा कोई अन्य उसे रसगुल्ले या अन्य मिठाई के स्वाद के विषय में समझाने का प्रयास करे। तो चूँकि उसने कभी भी मीठे का स्वाद ही नहीं चखा है। अतः अनुभव के अभाव में किसी अन्य के समझाए जाने पर भी वह मीठे स्वाद का अनुभव ही नहीं कर पाएगा। उसी प्रकार मनुष्य भी जब तक इस परम ज्ञान को अपने जीवन में नहीं लाता, उस ज्ञान का अनुभव नहीं करता तब तक ईश्वर की उपस्थिति को समझना सम्भव न होगा।

'एकम सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' ।।

परम सत्य एक ही है, परन्तु विद्वानों द्वारा अनेक मार्ग प्रतिपादित किए गए हैं। उस गुह्यतम सत्य को जानने एवं अनुभव करने हेतु कदाचित् जब कोई जीव इस परम गुह्य ज्ञान को समझ, परम तत्व को अनुभूत कर लेता है तब वह जीवात्मा चूँकि सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर का ही सूक्ष्म अंश है अतः प्रवृत्ति अनुसार वह भी आनन्दमयी है परन्तु परम भगवत् तत्त्व को न जानने के कारण वह स्वयं के आनन्दित स्वरूप से भी अनभिज्ञ है। अतः इस दुःखालय रूपी सांसारिक जन्म-मृत्यु चक्रों से बद्ध है।

वैराग्य शास्त्र आदि में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। जीव आत्मा जब प्रकृति में व्याप्त भौतिक पदार्थों की लालसा करते हुए, अपने बन्धु-बान्धवों एवम् परिवार जन के प्रति अति आसक्त होता है तब वृद्धावस्था में जब उसकी काया क्षीण हो जाती है, उस क्षण उसके समीप कोई नहीं होता। वियोग अवश्यम्भावी है। यह अटल सत्य है, जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है, कोई भी जीव किसी अन्य जीव का अनन्त काल या चिरकाल तक सहयोगी नहीं हो सकता। अतः ऐसी स्थिति को संज्ञान में लेते हुए जब जीव इस परम ज्ञान को अनुभूत कर लेता है तब वह अनन्त की अपनी इस यात्रा को वैरागी बन बिना किसी क्षोभ के आनन्द स्वरूप हो पूर्ण कर, भव सागर से मुक्त हो परमेश्वर के भगवत् धाम को प्राप्त करने हेतु सक्षम हो जाता है।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्। प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्॥9.2॥

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- High level kingly knowledge जो पूर्णतः गुप्त है।

यहाँ एक प्रसङ्ग उद्धृत करना चाहूँगी जो इस महान एवम् गुप्त ज्ञान को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है-

छान्दोग्यपनिषद् में वर्णित एक प्रसङ्ग जिसमें श्वेतकेतु नामक एक बालक (पाँच वर्षीय) जो बेहद नटखट था, अपने पिता जी के द्वारा शिक्षा पूर्ण करने हेतु गुरुकुल भेज दिया जाता है। बारह वर्ष पश्चात् जब वह अपनी शिक्षा पूर्ण कर पुनः अपने गृह को वापस आता है, सत्रह वर्षीय हो चुका होता है।

विद्या ग्रहण कर श्वेतकेतु शिक्षित होने के अभिमान से पूर्ण अपने पिता से दम्भ के वशीभूत हो कहता है कि "पिता जी मैं अपनी शिक्षा पूर्ण कर आया हूँ। अब आप मुझसे जिस भी विषय में प्रश्न पूछना चाहते हैं मैं उसका उत्तर भली प्रकार से दे सकता हूँ।

सर्वज्ञ होने का अहम् लिए उस पुत्र को यह कहाँ पता था कि उसके पिताजी उससे जो प्रश्न पूछेंगे वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सर्वाधिक कठिन प्रश्न होने वाला था, जिसका उत्तर उपनिषद् के एक सम्पूर्ण अध्याय में समाहित हुआ।

प्रश्न था- ऐसा क्या विषय है जिसके अध्ययन एवम् जिसे समझने के पश्चात् संसार में अन्य कुछ भी समझना या अध्ययन करना शेष नहीं रह जाता, हम सर्वज्ञ हो जाते हैं?

जिसका उत्तर श्वेतकेतु न दे सका। उसका समस्त अभिमान स्वतः ही विलोपित हो गया। प्रारम्भ में तो उसने इस विषय में अपने शिक्षकों द्वारा न समझाए जाने का दोष दिया, परन्तु अन्त में पिता जी से अपने इस व्यवहार हेतु क्षमा माँगते हुए प्रश्न का उत्तर पूछा, पिता उत्तर देते हैं- वह ज्ञान जिसे ब्रह्म ज्ञान कहा जाता है तथा जिसके द्वारा ब्रह्मत्व का ज्ञान प्राप्त होता है, जिसकी अनुभूति(ब्रह्मतत्त्व की) उस परम ज्ञान को अपने जीवन में पूर्ण रूप से अवतरण के पश्चात् ही होती है। उपनिषदों में विस्तार से

बताये गये इस ज्ञान को जब-तक हम अपने जीवन में न उतारेंगे तब तक उसकी अनुभूति प्राप्त नहीं होती।

जिस प्रकार स्वर्ण आभूषण स्वर्ण तत्त्व से निर्मित होते हैं, अतः तत्त्व को जान हम उस वस्तु के गुण-धर्म भी जान सकते हैं। उसी प्रकार जीव आत्मा सहित इस सम्पूर्ण संसार का उत्पत्ति करता, इसका रचनाकर कौन है, यदि हम जान जाते हैं, उसे अनुभूत कर लेते हैं तब हम उस परम सत्य को जान लेते हैं जो रहस्यमयी, दुर्लभ एवम् जीवों का उद्धार करने में सक्षम और अत्यन्त कठिन है।

परमात्मा को सर्वज्ञ जान, इस संसार को उन्हीं के द्वारा उत्पन्न हुआ यह अनुभूति कर कुछ प्राणी इसे आश्चर्य से देखते हैं। सन्त, महात्माओं के द्वारा बताये जाने पर कुछ जीव इस तथ्य का आश्चर्य से श्रवण करते हैं। सत्य को समझकर किसी जीव का इस प्रकार आश्चर्यचकित होना अवश्यम्भावी है।

परन्तु सन्तों द्वारा बताये जाने एवम् जीव के श्रवण करने पर भी कुछ लोग नहीं समझ पाते अतः उन्हें न तो परम सत्य का पूर्ण दर्शन ही होता है और न ही वे इसे अनुभव ही कर पाते हैं। बारम्बार श्रवण, चिन्तन, मनन करने से जीव के जीवनकाल में एक क्षण ऐसा आता है कि वह इस परम गुह्य ज्ञान को समझकर, उसकी अनुभूति भी कर पाता है।

निरन्तर गीता जी के पठन, पाठन एवम् चिन्तन, उनके ज्ञान की चर्चा से शनैः-शनैः वह स्थिति उत्पन्न होती है कि श्रीभगवान द्वारा उच्चारित गीता जी को जीव अपने जीवन में उतारना प्रारम्भ कर देता है, परिणामस्वरूप उसका अन्तःकरण स्वतः ही श्रीभगवान द्वारा बतायी गई दैवीय सम्पदाओं से परिपूर्ण हो जाता है।

पवित्रता- श्रीभगवान द्वारा यह ज्ञान पवित्र भी उल्लिखित किया गया है। जिस प्रकार अग्नि, जल एवम् वायु पवित्र माने जाते हैं। यज्ञ, हवन आदि में अग्नि का विशेष महत्त्व है तथा शारीरिक शुद्धता हेतु जल का भी अपना ही महत्त्व है। वायु की शुद्धता श्वास हेतु अतिआवश्यक है, उसी प्रकार शास्त्रों में निहित श्लोक भी मन्त्र सदृश अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा आत्मा के शुद्धीकरण का कार्य सम्पन्न करते हैं।

जब हम इस ज्ञान को धारण करने हेतु सक्षम होते हैं तब यह भगवत् ज्ञान जीवात्मा को उसके समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त कर मोक्ष के पथ पर अग्रसर करता है।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि कर्म कितने प्रकार के होते हैं तथा उसका जीवात्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

सञ्चित कर्म - अनन्त जन्मों से सङ्ग्रहित यह कर्म निरन्तर जीवात्मा को यथायोग्य फल देने वाले, सदैव जीव से संलग्न रहते हैं।

**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥4.5॥**

प्रारब्ध - जन्म से पूर्व ही इन कर्मों के फल जीवात्मा को प्राप्त होने लगते हैं। सत् कर्म के परिणाम स्वरूप कुछ जीवात्माएँ अपना सम्पूर्ण जीवन सदैव सुख पूर्वक व्यतीत करती हैं तथा उनके द्वारा किया गया कोई भी कार्य असफल नहीं होता। उसी प्रकार असत् कर्मों का फल भी जीवात्माओं को भोगना पड़ता है।

क्रियमाण कर्म - वर्तमान में जो हम कर्म कर रहे हैं, वे भी सञ्चित होते जाते हैं। शङ्कराचार्य जी के अनुसार पलक झपकाने का कार्य भी जीव के पूर्व कर्मों से बद्ध है।

परन्तु जब हमें श्रीभगवान द्वारा प्रदान किया हुआ ज्ञान अनुभूत रूप में प्राप्त होता है, तत्क्षण जीव के समस्त कर्म फल चाहें वे पुण्य कर्मों से उत्पन्न हो या पाप कर्मों से विलोपित हो जाते हैं तथा जीव इस जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त हो परम गति प्राप्त करता है।

हमने अधिकांश साधु-सन्तों (जिनके नेत्र भी न हों) को देखा है जो कदापि विद्यालय, महाविद्यालय नहीं गये, उन्होंने किसी गुरु से विधिवत कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की परन्तु वे विज्ञान के उन दुर्लभ सिद्धान्तों की भी समझ रखते हैं जिन्हें अच्छे-अच्छे विद्वान भी नहीं समझ पाते। ऐसा क्यों होता है? संसार में व्याप्त सम्पूर्ण ज्ञान एवम् विज्ञान इस cosmos अर्थात् आकाश में, अन्तरिक्ष में सर्वत्र विद्यमान है तथा चूँकि जीवात्मा स्वयं के कलुषित विचारों अर्थात् राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या छल, कपट आदि के आवरण से आच्छादित है तथा दूषित विचारों का यह आवरण जीव के अन्तःकरण को मलीन कर देता है। अतः इस मलीनता के कारण जो जीव परमात्मा के आशीर्वाद स्वरूप जगत में व्याप्त उस ब्रह्मज्ञान को ग्रहण करने में असमर्थ हैं। अतः वह परमात्मा से भी विमुख हो जाता है।

गीता जी इस कलुषित विचार रूपी मलीन आवरण को विलुप्त कर जीव के अन्तःकरण की शुद्धि का एक उत्तम मार्ग हैं। अतः हमारे गुरुजी गीता जी के नियमित अभ्यास पर बल देते हुए कहते हैं कि गीता जी पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लाएं।

परन्तु जीव के मन का यह दूषित आवरण इतनी सरलता से क्षीण नहीं होता। गीता जी जो समस्त शास्त्रों का सार रूप है, का नियमित अभ्यास जीवन पर्यन्त साथ देता हुआ जीव को प्राप्त अन्य जन्मों में भी विस्मृत नहीं होता। निरन्तर जीव के साथ प्रगति करते हुए, फिर चाहें इसके लिए अनेकों जन्म क्यों न ही लग जाये, जीव को आत्मज्ञान की अनुभूति करा उसे परम् पथ के मार्ग पर अग्रसर होने हेतु प्रेरित करता है।

जीव को यह धर्म-अधर्म में अन्तर को समझाते हुए धर्म पथ पर गति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उसके अन्तःकरण की मलीनता को, जो कि जीवात्मा का महा शत्रु है, को विनष्ट कर देता है।

9.3

अश्रद्धधानाः(फ) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप। अप्राप्य मां(न) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि॥9.3॥

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन- जो श्रद्धा से विमुक्त होकर मेरी पूजा-अर्चना करते हैं, वे इस मृत्यु लोक में बारम्बार आते हैं। जन्म-मृत्यु का यह चक्र चलता रहता है।

पृथ्वी को मृत्यु संसार क्यों कहते हैं? चूँकि इस लोक में निरन्तर कोई न कोई जीव मृत्यु को प्राप्त होता है अतः इसे मृत्युलोक कहते हैं। बार-बार जन्म एवम् मृत्यु का कारण कर्म भोग ही हैं, हम जैसे कर्म करते हैं उसी के अनुसार हमें जन्म मिलता है। यदि हम सात्त्विक कर्म करते हैं तब हम मनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं।

जो मनुष्य इस भौतिक देह को ही महत्त्व देते हुए, जीवात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते, वे जीव एक ही जीवन में विश्वास करते हुए इस प्रकृति में विद्यमान समस्त भौतिक पदार्थों के भोक्ता बन सर्व सुख की कामना करते हुए निरन्तर प्रयासरत रहते हैं, ऐसे जीव उनके कर्मों का यथायोग्य फल भोगते हुए नित्य भवसागर रूपी इस संसार में जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाते।

जबकि आत्मा नित्य है, सच्चिदानन्द का अंश स्वरूप जीवात्मा जिसे चैतन्य सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है, अन्तःकरण से संलग्न हो नित्य प्रति जन्म लेती है।

अन्तःकरण सङ्कल्प, विकल्प करता है।

बुद्धि निर्णय करती है। बुद्धि के सात्त्विक होने पर व्यक्ति सात्त्विक कर्म करता है।

बुद्धि भ्रष्ट होने पर जीव तामसिक कर्मों में संलग्न होता है।

जब चित्त अर्थात् अन्तःकरण में अहङ्कार का समावेश होता है तब चैतन्य कर्म बन्धनों सहित हो पुनर्जन्म के कालचक्रों से युक्त

हो जाता है।

महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न पूछा-

यह बहुत आश्चर्य का विषय है कि जब मनुष्य का कोई सगा-सम्बन्धी मृत्यु को प्राप्त होता है, ऐसी स्थिति में मनुष्य रोता क्यों है जबकि वह सम्पूर्ण सच्चाई से अवगत होता है कि जन्म के साथ मृत्यु अटल है अर्थात् जिसने जन्म लिया है, वह निश्चित ही मृत्यु को प्राप्त होगा। क्या वह इस सच्चाई को अनुभूत करते हुए स्वयं हेतु विलाप करता है?

जितना कष्ट हम किसी जीव को उसकी मृत्यु के समय होते हुए देखते हैं वैसा ही कष्ट जीवात्मा को गर्भावस्था के समय भी भोगना पड़ता है। जन्म के पश्चात वह सम्पूर्ण जीवन भौतिक पदार्थों से प्राप्त सुखों के पीछे भागता है। पुण्य कर्मों से कभी जीवात्मा स्वस्थ शरीर एवम् धन-धान्य आदि सुख प्राप्त करती है जबकि कभी पाप कर्मों के फलस्वरूप भौतिक देह प्राप्त कर भी वह दूषित कर्मों में लिप्त हो अधिकाधिक पतन की ओर अग्रसर होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, उपनिषद् आदि का ज्ञान हो जाने पर वे महात्मा भी जिनके भौतिक देह विकृतियों से युक्त हैं, इस भौतिक संसार में उपस्थित हो ईश्वरीय तत्त्व को अनुभूत कर परम आनन्द प्राप्त कर जीवन चक्र के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। भौतिक पदार्थों का चाहे वह भौतिक देह हो, धन-सम्पत्ति आदि का सुख सदैव क्षणिक ही होता है। परम तत्त्व का ज्ञान ही परम सुख देने वाला है अतः इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करने हेतु निरन्तर सङ्घर्षरत रहना ही सर्वोपरि होगा।

9.4

**मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः॥9.4॥**

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन- इस श्लोक के माध्यम से श्रीभगवान स्वयं के तथा इस सम्पूर्ण संसार के भ्रामक स्वरूप को उजागर करते हैं। उनके द्वारा दिया गया यह ज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट है।

यह गूढ़ ज्ञान एक बार के अध्ययन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। तर्कों के आधार पर इस ज्ञान को मस्तिष्क में बैठाया तो जा सकता है, परन्तु अनुभूत ज्ञान की प्राप्ति बिना परम तत्त्व की प्राप्ति असम्भव है।

जिस प्रकार अन्धकार में रस्सी को भी सर्प समझने का भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार अनेक विद्वान श्रीभगवान की इस ब्रह्माण्ड में उपस्थिति को लेकर भ्रमित रहते हैं। अतः श्रीभगवान स्वयं इस श्लोक के माध्यम से सम्पूर्ण जीव जगत तथा उसमें निहित अपनी स्थिति को स्पष्ट कर रहे हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत मेरे अव्यक्त रूप द्वारा व्याप्त है अर्थात् ईश्वरीय तत्त्व सर्वत्र है। परमेश्वर की अदृश्य शक्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत का निर्माण सम्भव हुआ है। अतः सम्पूर्ण जगत तो श्रीभगवान में निहित है परन्तु श्रीभगवान जगत से कदापि बद्ध नहीं हैं, ब्रह्माण्ड के परे वे अपनी पृथक् सत्ता रखते हैं परन्तु जीव अपनी भौतिक इन्द्रियों के कारण उनका इस जीव जगत में क्या स्थान है, वह समझ नहीं पाता।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृत्र च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः॥9.5॥

विवेचन- तथापि मेरे द्वारा उत्पन्न समस्त चर-अचर पदार्थ मुझमें स्थित नहीं हैं, यह मेरी अचिन्त्य योग-शक्ति है। यद्यपि मैं समस्त जीवों का पालनकर्ता हूँ और सर्वत्र व्याप्त हूँ, परन्तु मैं इस विराट् अभिव्यक्ति का अंश नहीं हूँ, क्योंकि मैं कारण स्वरूप हूँ।

जिस प्रकार अन्वेषण करने पर हम पाते हैं कि रस्सी तो रस्सी ही है सर्प नहीं। उसी प्रकार जब भगवत् ज्ञान के चक्षु की मनुष्य को प्राप्ति हो जाती है तत्क्षण उसके संसार एवम् उसमें श्रीभगवान को लेकर उसके मस्तिष्क में व्याप्त सारे भ्रम समाप्त हो जाते हैं।

एवम् जीव श्रीहरि की सर्व व्यापकता को जान जाता है।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन- अर्थात् सर्वत्र प्रवाहमान प्रबल वायु सदैव आकाश में स्थित रहती है, उसी प्रकार समस्त उत्पन्न प्राणियों को मुझमें स्थित जानो तथा जैसे आकाश वायु से बद्ध नहीं होती उसी प्रकार मैं भी जीव जगत से बद्ध नहीं। मैं किसी भी प्राणी मात्र के प्रति आसक्त नहीं हूँ।

आसक्ति ही इस संसार में सर्वाधिक कष्टदायक बन्धन है, जिससे मुक्त हुए बिना भवसागर से मुक्ति असम्भव है।
चलिए आज के इस विवेचन सत्र को यहीं विश्राम देते हैं, अगले विवेचन सत्र में हम संसार की उत्पत्ति, काल गणना, कल्प, मन्वन्तर, दिन-रात, प्रकृति कैसे क्रियाशील है? उसे जानेंगे।

प्रश्नोत्तर सत्र-

प्रश्नकर्ता- मुकेश भैया

प्रश्न- मत्सर क्या है?

उत्तर- यह ईर्ष्या का ही एक स्वरूप होता है।

प्रश्नकर्ता- एन. रमन भैया

प्रश्न- भगवान के सगुण साकार और निर्गुण निराकार रूप को कैसे समझे?

उत्तर- सबसे पहले भगवान का निर्गुण निराकार रूप आया उससे फिर सगुण साकार स्वरूप की उत्पत्ति हुई। निर्गुण निराकार का तात्पर्य है जिसका कोई आकार नहीं है और साकार का अर्थ जो आकार युक्त है। यह सम्पूर्ण सृष्टि की रचना निर्गुण निराकार परमात्मा से हुई है।

प्रश्नकर्ता- कल्पना दीदी

प्रश्न- भगवान कहते हैं कि मैं सब प्राणियों में हूँ किन्तु मुझमें कोई नहीं है। यह समझ में नहीं आ रहा है। कृपया समझाएँ।

उत्तर- भगवान ने ऐसा इसलिए कहा कि सूक्ष्म परम तत्त्व सभी प्राणियों में विद्यमान है। किन्तु यह सृष्टि एक भ्रम की भाँति है तो जो है ही नहीं वह मुझमें कैसे विद्यमान होगा! भगवान ने स्वयं को ही परम तत्त्व और सत्य बताया है। अन्य सभी कुछ मिथ्या है।

प्रश्नकर्ता- रश्मि दीदी

प्रश्न- अध्याय नौ के प्रथम श्लोक के तीसरे और चौथे चरण का अर्थ पुनः बता दीजिए।

उत्तर- ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान कह रहे हैं कि मैं तुम्हें इस ज्ञान को विज्ञान सहित बता रहा हूँ जिसे जानकर तुम इस संसार से मुक्त हो जाओगे। ज्ञान अर्थात् शाब्दिक ज्ञान और विज्ञान अर्थात् जिसका हमें अनुभव हो जाए।

प्रश्नकर्ता- ज्योति दीदी

प्रश्न- क्या ज्ञान और भक्ति साथ-साथ हो सकती हैं?

उत्तर- जी ज्ञान और भक्ति साथ-साथ ही चलती हैं। इसमें सन्तुलन करना आवश्यक होता है।

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचें। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़ें, पढ़ाएँ, जीवन में लायें ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥